शिवराज भूषण

महाकवि भूषण

किताबघर
गाँधीनगर, दिल्ली 110031

प्रकाशक : **किताबघर**
मेन रोड, गांधीनगर, दिल्ली-110031

प्रथम संस्करण : नवम्बर, 1982

मूल्य : तीस रुपये

मुद्रक : संजीव कम्पोजिंग एजेन्सी, द्वारा
गौतम आर्ट प्रेस, दिल्ली-110032

SHIVRAJ BHUSHAN (Hindi)
Price Rs. 30,00

भूमिका

यह कथन अक्षरशः सत्य है कि सुकवि की कविता में जादू का-सा असर होता है। वह पढ़ने और सुनने वालों के हृदयों पर तत्क्षण अमिट प्रभाव डालकर उन्हें कुछ का कुछ बना देती है। महाकवि बिहारीलाल के—

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं बिकास यहि काल।
अली कली ही सों बिंध्यो, आगे कौन हवाल॥

इस दोहे का जो असर जयपुर-नरेश के ऊपर हुआ था, उसे प्रत्येक हिंदी-साहित्य का रसिक अच्छी तरह जानता है। किसी संस्कृत के कवि ने बहुत ही ठीक कहा है—

किं कवेस्तस्य काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः।
परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः॥

अर्थात् कवि के उस काव्य से क्या लाभ और धनुर्धर वीर योद्धा के उस तीर की क्या प्रशंसा, जो पर (दूसरे, अन्य पक्ष में शत्रु) के हृदय में लगकर उसके सिर को न हिला दे।

इसी भाव को लेकर महाकवि बिहारीलाल ने भी कहा है—

सतसैया को दोहरा, ज्यौं नावक को तीर।
देखन को छोटो लगै, घाव करै गंभीर॥

अस्तु। वीर-रस एक सजीव रस है। वीर-रस की कविता कायरों की भी नसों में मर्दानगी का जोश भर देती है। जैसे मारू बाजा सुनकर सिपाही मस्त हो उठते हैं, समर में पीछे पैर नहीं डालते, वैसे ही पूर्वकाल में चारणों के मुख से पूर्वजों की तथा अपनी वीरता की गाथाएँ सुनकर योद्धा लोग समर में अलौकिक वीरता के कार्य कर दिखाते थे, जिन्हें देख-सुनकर लोग चकित हो जाते और दाँतों-तले उँगली दबाते थे।

महाकवि भूषण की भी कविता ऐसा ही असर रखती थी। महाराज

जहाँ वीरबल (बादशाह अकबर के प्रसिद्ध मुसाहब) के समान वीर, कवि और राजा उत्पन्न हुए हैं। जहाँ वैसे ही देव, बिहारी, ईश्वर और विश्वेश्वर नाम के प्रसिद्ध कवि रहे हैं ॥ २४ ॥

कुल सुलंक चितकूटपति साहस सील समुद्र ।
कबिभूषन पदवी दई हृदयराम-सुत रुद्र ॥२५॥

चित्रकूट के राजा, सोलंकी कुल में उत्पन्न, हृदयराम के पुत्र रुद्रशाह ने, जो कि साहस और शील के समुद्र हैं, उक्त कवि को कवि-भूषण की पदवी दी (जान पड़ता है, भूषण का असल नाम कुछ और था। उनकी यह भूषण उपाधि इतनी प्रसिद्ध हो गई कि असल नाम लुप्त ही हो गया। यहाँ तक कि भूषण ने भी अपने असल नाम का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं समझी) ॥ २५ ॥

सिवचरित्र लखि यों भयो कबि भूपन के चित्त ।
भाँति भाँति भूषननि सों भूषित करौं कबित्त ॥२६॥

महाराज शिवाजी के चरित्र को देखकर भूषण कवि के चित्त में यह बात आई कि भाँति भाँति के भूषणों (अलंकारों) से भूषित कविता बनाऊँ ॥ २६ ॥

सुकबिन हूँ की कछु कृपा समुझि कबिन को पन्थ ।
भूषन भूषनमय करत सिव-भूषन सुभ ग्रन्थ ॥२७॥

कुछ सुकवियों की भी कृपा पाकर और कवियों के पंथ (मार्ग) को समझकर—अर्थात् उनके अलंकार-वर्णन की परम्परा को समझकर—कवि भूषण यह भूषणमय (अर्थात् अलंकार-वर्णन-विषयक) शिवराज-भूषण नाम का शुभ ग्रन्थ रचता है ॥ २७ ॥

भूषन सब भूषननि में उपमहि उत्तम चाहि ।
याते उपमहि आदि दै बरनत सकल निबाहि ॥२८॥

भूषण कवि सब अलंकारों में उपमा (अलंकार) को ही उत्तम समझता है। इसलिए आदि में उपमा का ही वर्णन करके अन्य सभी अलंकारों का निर्वाह करता हुआ उनका वर्णन करता है ॥ २८ ॥

दोहा

जहाँ दुहुँन की देखिए सोभा बनत समान ।
उपमा भूषन ताहि को भूषन कहत सुजान ॥ २९ ॥

जहाँ दोनों पक्ष की समान शोभा बनते देखिए, उसे सुजान लोग उपमा अलंकार कहते हैं ॥ २९ ॥

जाको बरनन कीजिए सो उपमेय प्रमान ।
जाकी सरबरि कीजिए ताहि कहत उपमान ॥ ३० ॥

जिसका वर्णन किया जाय वह उपमेय है और जिसकी सरवर (बराबरी या तुलना) कीजिए, उसे उपमान कहते हैं (उपमा के चार अंग होते हैं—१. उपमान, २. उपमेय, ३. वाचक और ४. धर्म। उपमा का उदाहरण हुआ—आँखें कमलदल सी विशाल हैं। इसमें 'आंखें' उपमेय, 'कमलदल' उपमान, 'सी' वाचक और 'विशाल' धर्म है। इसी तरह सर्वत्र जानिए) ॥ ३० ॥

कवित्त

मिलतहि कुरुख चकत्ता को निरखि कीन्हो सरजा ब्रजेस ज्यों दुचित सुरराज को। भूषन कुमिसि गैरमिसिल खरे किये को किये म्लेच्छ मुरछित करिकै गराज को ॥ अरे ते गुसलखाने बीच ऐसे उमराय लै चले मनाय महाराज सिवराज को। दाबदार निरखि रिसानो दीह दलराय जैसे गड़दार अड़दार गजराज को ॥ ३१ ॥

मिलते ही चकत्ता (मुग़लों की चग़ताई नाम की एक शाखा में उत्पन्न) औरंगज़ेब का बुरा रुख़ देखकर शिवाजी ने (ग़ुस्से में आकर) उसी तरह उसे दुचित्ता या शंकित कर दिया, जैसे कृष्णचंद्र ने (इन्द्रयज्ञ में विघ्न डालकर और गोवर्द्धन पर्वत उठाकर) सुरराज इन्द्र को शंकित कर दिया था। भूषण कहता है, जैसे बुरा बहाना करके गैरमिसिल—बेतरतीब अर्थात् अनुचित जगह पर शिवाजी को शाही सिपाहियों ने खड़ा करना चाहा, वैसे ही उन्होंने गरजकर (वहाँ उपस्थित) म्लेच्छों (मुसलमानों) को मूर्च्छित कर दिया। शिवाजी के अड़ने (या बिगड़ खड़े होने से) जब शाह ग़ुसलख़ाने में भागकर छिप रहा, तब उसके उमरा लोग महाराज शिवराज को वहाँ से मनाकर (ख़ुशामद करके) इस तरह ले चले, जिस तरह दबंग, लंबे-चौड़े, दलपति, ऐंड़दार गजराज को रिसाया हुआ (बिचला हुआ) देखकर गड़दार लोग (बिगड़े हुए मस्ताने हाथी को साँटे मारकर ठीक करने वाले साँटेमार लोग) चुमकार-पुचकारकर मनाते हैं ॥ ३१ ॥

न कल अति कौतुक उदोत है। "सिव आयो सिव आयो" संकर के आगमन सुनिकै परान ज्यों लगत अरि गोत हैं। सिव सरजा न यह सिव है महेस करि ऐसे उपदेस जच्छ रच्छक से होत हैं ॥ ८६ ॥

शाहि के पुत्र सरजा के भय से भागे हुए भूप सुमेरु पर जाकर छिपने पर विश्राम पाते हैं। भूषण कहता है, पर मराठों के पति के प्रताप से वहाँ भी उन्हें कल नहीं मिलती। बड़ा कौतुक होता है। वहाँ शंकर के आने पर "शिव आए, शिव आए" ये शब्द सुनकर शत्रुगण वहाँ से भी (शिवाजी के आने की आशंका से) भागने लगते हैं। तब यक्ष लोग यह कहकर कि "यह सरजा शिवाजी नहीं, शिव महादेव हैं" उनके रक्षक से होते हैं ॥ ८६ ॥

सवैया

एक समै सजि कै सब सैन सिकार को आलमगीर सिधाए।
आवत है सरजा सँभरौ इक ओर ते लोगन बोल जनाए ॥
भूषन भो भ्रम औरँग के सिव भौंसिला भूप की धाक धुकाए।
धायकै सिंह कह्यो समुझाय करौलनि आय अचेत उठाए ॥ ८७ ॥

एक समय सब सेना सजाकर आलमगीर औरंगज़ेब शिकार को चला। एक ओर से कुछ (शिकारी) लोगों ने ये शब्द सुनाए कि "सरजा (शिवाजी, पक्षान्तर में सिंह) आता है, सँभलो"। तब औरंगज़ेब को यह भ्रम हुआ कि सरजा शिवाजी आ गए, और भौंसिला-भूप की धाक (आतंक) से उसका कलेजा धड़क उठा (तथा वह मूर्च्छित हो गया)। उस समय अन्य शिकारी साथियों ने दौड़कर समझाया कि सिंह आया है, और उन्होंने अचेत बादशाह को उठाया ॥ ८७ ॥

दोहा

जहाँ और को संक करि साँच छिपावत बात।
छेकापन्हुति कहत हैं भूषन कबि अवदात ॥ ८८ ॥

जहाँ और बात की शंका करके सच्ची बात छिपाई जाती है, वहाँ भूषण कहता है कि कवि लोग छेकापन्हुति अलंकार कहते हैं ॥ ८८ ॥

उदाहरण

तिमिरबंसहर अरुनकर आयो सजनी भोर।
सिव सरजा चुप रहि सखी सूरजकुल सिरमौर ॥ ८९ ॥

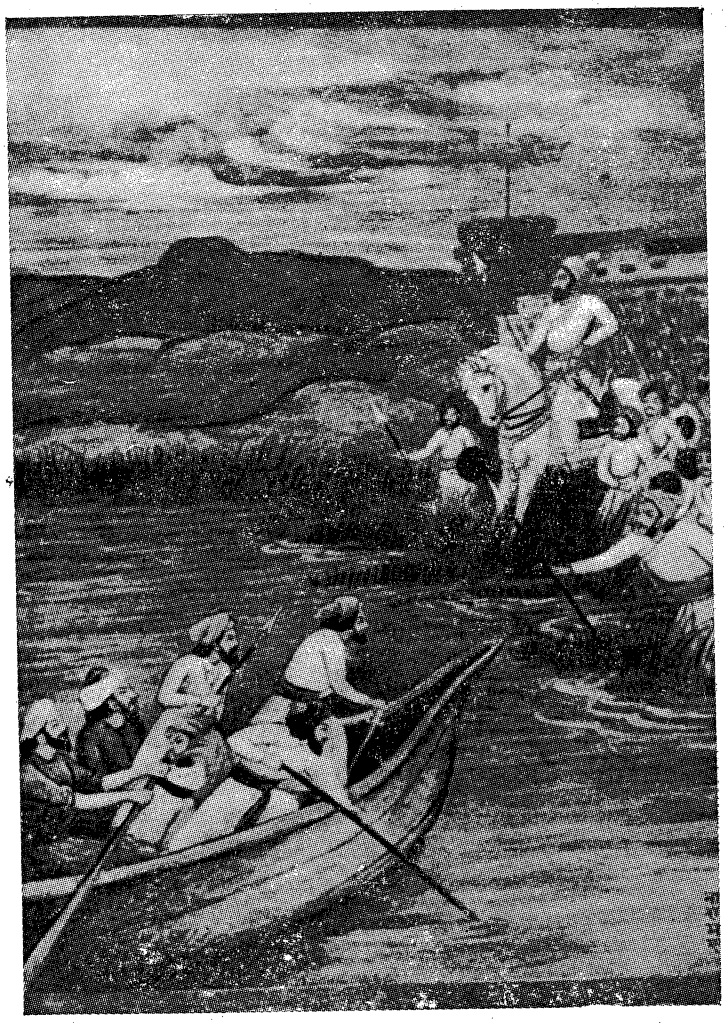

साहिन के सिच्छक सिपाहिन के पातसाह संगर मैं सिंह के से जिनके सुभाव हैं।
भूषन भनत सिव सरजा की धाकते वै काँपत रहत चित्त गहत न चाव हैं।
अफजल की अगति सासता की अपगति बहलोल बिपति सों डरे उमराव हैं।
पक्का मतो करिकै मलिच्छ मनसब छोड़ि मक्का ही के मिस उतरत दरियाव हैं॥

एक सखी दूसरी से कहती है—सजनी, तिमिर (सूर्य के पक्ष में अँधेरा, शिवाजी के पक्ष में तैमूरलंग बादशाह) के वंश को हरने वाला और अरुण अर्थात् लाल कर (सूर्य के पक्ष में किरणें, शिवाजी के पक्ष में मुग़लों के रक्त से लाल हाथ) वाला, कुल-सिरमौर सबेरे आया। दूसरी पूछती है—कौन, सरजा शिवाजी? पहली कहती है—चुप रह सखी। शिवाजी नहीं, सूर्य॥८९॥

तथा

दुरगहि बल पंजन प्रबल सरजा जिति रन मोहिं।
औरँग कहै दिवान सों सपन सुनावत तोहिं॥ ९०॥
सुनि सु उजीरन यों कह्यो सरजा सिव महराज।
भूषन कहि चकता सकुचि नहिं सिकार मृगराज॥ ९१॥

औरंगज़ेब अपने दीवान से कहता है, मैं तुझे स्वप्न सुनाता हूँ कि दुर्गहि-बल अर्थात् अपने गढ़ के बल से (शिवा के पक्ष में दुर्गा ही के बल से), प्रबल पंजों वाले सरजा (शेर, दूसरा अर्थ शिवाजी) ने रण में मुझे जीत लिया। यह सुनकर वज़ीर ने यों कहा—क्या सरजा शिवाजी महाराज ने? भूषण कहता है, तब चकत्ता औरंगज़ेब ने सकुचकर कहा—नहीं जी, शिकार में मृगराज ने॥ ९०-९१॥

दोहा

जहँ कैतव छल ब्याज मिसि इनसों होत दुराव।
कहत कैतवापन्हुतिहि भूषन कहि सतिभाव॥ ९२॥

जहाँ कैतव (कपट), छल, व्याज, मिस (बहाने) आदि से बात छिपाई जाय, उसे कैतवापन्हुति कहते हैं (इस अलंकार में कैतव, मिस आदि शब्द अवश्य प्रयुक्त होते हैं)॥ ९२॥

कवित्त

साहिन के सिच्छक सिपाहिन के पातसाह संगर मैं सिंह के से जिनके सुभाव हैं। भूषन भनत सिव सरजा की धाक ते वै काँपत रहत चित्त गहत न चाव हैं॥ अफजल की अगति सासता की अपगति बहलोल बिपति सों डरे उमराव हैं। पक्का मतो करिकै मलिच्छ मनसब छोंड़ि मक्का ही के मिस उतरत दरियाव हैं॥ ९३॥

continued

जो लोग शाहों के शिक्षक, सिपाहियों के बादशाह हैं और समर में सिंह का-जैसा जिनका स्वभाव है, भूषण कहता है, सरजा शिवाजी की धाक से वे भी काँपते रहते हैं, उनके चित्त में उत्साह नहीं होता। अफ़ज़लखाँ की दुर्दशा, शाइस्ताखाँ की दुर्गति और बहलोलखाँ की विपत्ति से उमरा लोग डर गए। पक्की राय करके सब म्लेच्छ अपने शाही मनसबों को छोड़कर मक्का जाने के बहाने समुद्र के पार उतर जाते हैं (जिसमें शिवाजी से जान बचे) ॥ ६३ ॥

दोहा

आन बात को आन मैं जहँ सम्भावन होय ।
बस्तु हेतु फल जुत कहत उत्प्रेक्षा है सोय ।। ६४ ॥

और बात की और बात में जहाँ संभावना हो, उसे उत्प्रेक्षा अलंकार कहते हैं। इसके तीन भेद हैं—एक वस्तूत्प्रेक्षा, दूसरी हेतूत्प्रेक्षा और तीसरी फलोत्प्रेक्षा होती है ॥ ६४ ॥

सवैया

दानव आयो दगा करि जावली दीह भयारो महामद भारचो ।
भूषन बाहुबली सरजा तेहि भेंटिबे को निरसंक पधारचो ॥
बीछू के घाय गिरे अफजल्लहि ऊपर ही सिवराज निहारचो ।
दाबि यों बैठचो नरिन्द अरिन्दहि मानो मयन्द गयन्द पछारचो॥ ६५॥

जावली (वह स्थान, जहाँ शिवाजी ने अफ़ज़लखाँ को मारा था) में दानव (अफ़ज़लखाँ) दग़ा करने को आया, जो लंबा-चौड़ा भयावना और बड़ा घमंडी था। भूषण कहता है, बाहुबल से युक्त शिवाजी बिना किसी शंका के—बेखटके—उससे मिलने को पधारे—गए। बिच्छू (एक शस्त्र) के घाव को खाकर जब अफ़ज़लखाँ गिरा, तो शिवाजी उसके ऊपर ही देख पड़े। वह नरेन्द्र अपने श्रेष्ठ शत्रु को नीचे दबाकर इस तरह बैठे, जैसे शेर ने हाथी को पछाड़ दिया ॥ ६५ ॥

साहि तनै सिव साहि निसा में निसाँक लियो गढ़ सिंह सोहानौ ।
राठिवरो को सँहार भयो लरिकै सरदार गिरचो उदैभानौ ॥
भूषन यों घमसान भो भूतल घेरत लोथनि मानो मसानौ ।
ऊँचे सुछज्ज छटा उचटी प्रगटी परभा परभात की मानौ ॥ ६६ ॥

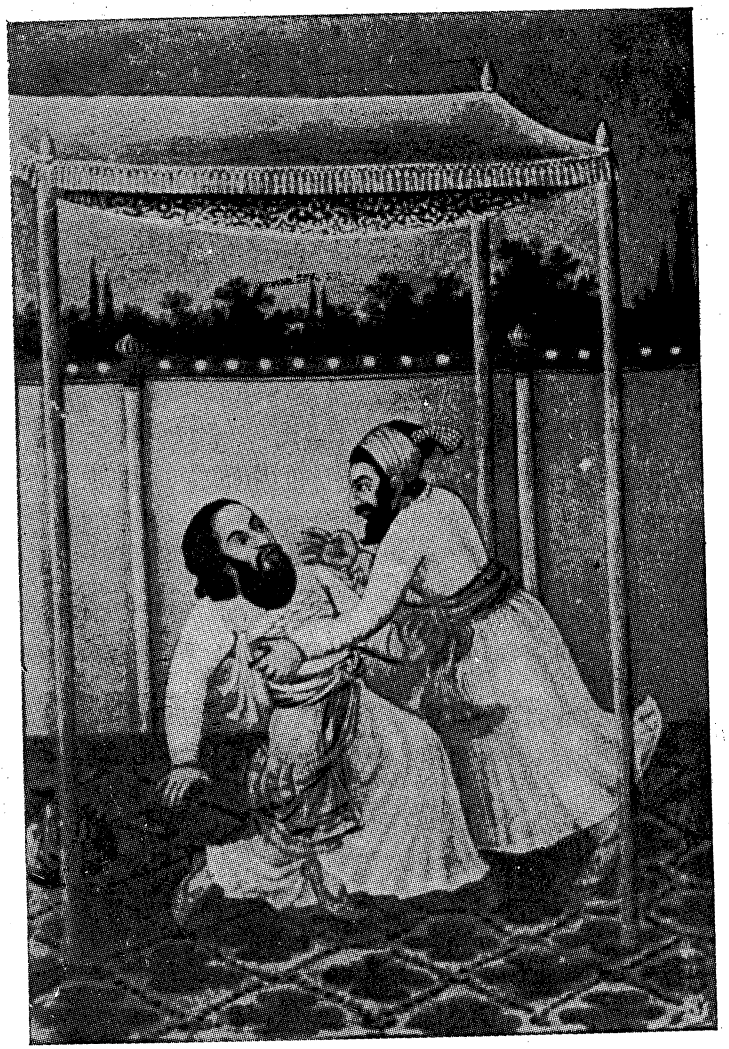

"बीछू के घाय गिरे अफजल्लहि ऊपर ही सिवराज निहारचो।
दाबि यों बैठचो नरिन्द अरिन्दहि मानो मयन्द गयन्द पछारचो ॥"

मानहुँ अमाल है। भूषन भनत लूट्यो पूना में सइस्तखान गढ़न में लूट्यो त्यों गढ़ोइन को जाल है। हेरि हेरि कूटि सलहेरि बची सरदार घेरि घेरि लूट्यो सब कटक कराल है। मानो हय हाथी उमराव करि साथी अवरंग डरि सिवाजी पै भेजत रिसाल है॥ ९९॥

ख़ानदौरा को लूटा, ज़ोरावरख़ाँ, सफ़दरजंग और तलबख़ाँ ने मार पाई। तलबख़ाँ ने अमाल (आमिल=हाकिम) होने की हैसियत से मानों भेंट में मार पाई। भूषण कहता है, पूने में शाइस्ताख़ाँ को लूटा। गढ़ों में छोटे-छोटे गढ़ों को लूट लिया। सलहेरि गढ़ के बीच खोज-खोजकर सब सरदारों को कुचलकर घेर-घेर कर सारी विकराल शाही सेना को लूटा। मानों औरंगज़ेब घोड़े, हाथी और उमरा साथ करके शिवाजी के पास (युद्ध के लिए सेना नहीं) ख़िराज (कर) भेजता है॥ ९९॥

उदाहरण

जाहि पास जात सो तौ राखि ना सकत याते तेरे पास अचल सुप्रीति नाधियतु है। भूषन भनत सिवराज तव कित्ति सम और की न कित्ति कहिबे को काँधियतु है। इन्द्र को अनुज तैं उपेंद्र अवतार याते तेरो बाहुबल लै सलाह साधियतु है। पाँय तर तिन्हैं नित निडर बसायबे को कोट बाँधियतु मानो पाग बाँधियतु है॥ १००॥

जिसके पास जाते हैं, वह तो रख नहीं सकता, रक्षा नहीं कर सकता, इससे तेरे पास (तेरी शरण में) अचल जो पहाड़ हैं, वे प्रीति को बाँधते हैं। भूषण कहता है, हे शिवराज, तेरी कीर्ति के समान और किसी की कीर्ति नहीं कही जा सकती। तू इन्द्र के छोटे भाई उपेन्द्र (वामन) का अवतार है, इसी से तेरे बाहुबल का सहारा लेने की (पर्वत) सलाह करते हैं (क्योंकि इन्द्र के भय से भीत हैं। कारण, इन्द्र से कुपित होकर पहाड़ों के पंख वज्र से काट डाले थे)। वे जब तेरे चरणों के तले (शरण में) आते हैं, तब तू उन्हें निडर होकर रहने को कोट (गढ़) नहीं उन पर बनवाता, उनके सिर पर पगड़ी बाँधता है (शिवाजी के क़िले प्रायः पहाड़ों पर ही अधिक बने थे)॥ १००॥

दोहा

दुवन सदन सबके बदन सिव सिव आठो जाम।
निज बचिबे को जपत जनु तुरकौ हर को नाम॥ १०१॥

शत्रुओं के घरों में सबके मुखों में आठौ पहर शिव शिव (शिवाजी) ये ही शब्द रहते हैं। मानों अपने बचने के लिए तुर्क भी शिव का नाम जपते हैं॥ १०१॥

दोहा

मानो इत्यादिक बचन आवत नहिं जेहि ठौर।
उत्प्रेक्षा गमगुप्त सों भूषन भनत अमौर॥ १०२॥

'मानो' इत्यादि वचन जिस जगह नहीं आते, उसे गम्यगुप्तोत्प्रेक्षा कहते हैं॥ १०२॥

कवित्त

देखत उँचाई उदरत पाग सूधी राह द्योस हू मैं चढ़ैं ते जे साहस-निकेत हैं। सिवाजी हुकुम तेरो पाय पैदलन सलहेरि परनालो ते वै जीते जनु खेत हैं॥ सावन भादौं की भारी कुहू की अँध्यारी चढ़ि दुग्ग पर जात मावलीदल सचेत हैं। भूषन भनत ताकी बात मैं बिचारी तेरे परताप रबि की उज्यारी गढ़ लेत हैं॥ १०३॥

भूषण कहता है, हे शिवाजी, सलहेरि और परनालागढ़ ऐसे ऊँचे हैं कि ऊपर सिर उठाकर उन्हें देखने से पगड़ी गिर पड़ती है, उनकी सीधी राह पर दिन में चढ़ना भी बड़े साहस का काम है; पर तेरा हुक्म पाकर पैदल मावली-सेना ने उन्हें खेत की तरह सहज में मँझाकर जीत लिया। सावन-भादों की अमावस की भारी अँधेरी में उन गढ़ों पर सावधान मावली-सेना चढ़ती है। मेरे विचार में वे सिपाही नहीं, तेरे प्रताप के सूर्य की उजियाली है, जो उन गढ़ों को जीतकर लिए लेती है॥ १०३॥

दोहा

और गढ़ोई नदी नद सिव गढ़पाल दरचाव।
दौरि दौरि चहुँ ओर ते मिलत आनि यहि भाव॥ १०४॥

में, वामन अवतार में, परशुराम अवतार में, रामचन्द्र में, बलराम में, बुद्ध अवतार में जो विक्रम था और कल्कि-अवतार में आगे होने वाला विक्रम सुना है, वही विक्रम अब साहस और भूमि के आधार सरजा श्रीशिवराज में है ॥ १३८ ॥

कवित्त

कीरति सहित जो प्रताप सरजा मैं बर मारतंड मध्य तेज चाँदनी सो जानी मैं । सोहत उदारता औ सीलता खुमान मैं सो कंचन मैं मृदुता सुगंधता बखानी मैं ॥ भूषन भनत सब हिन्दुन को भाग फिरै चढ़े ते कुमति चकता हू की निसानी मैं । सोहत सुबेस दान कीरति सिवा मैं सोई निरखी अनूप रुचि मोतिन के पानी मैं ॥ १३९ ॥

शिवाजी में कीर्ति-सहित जो प्रताप है, वही सूर्यमंडल के बीच तेज की चाँदनी (प्रकाश) मैंने जानी है । खुमान में उदारता और शील जो सोहता है, वही मैंने सोने में कोमलता और सुगन्ध (के समान) बखानी है । भूषण कहता है, हिन्दुओं का भाग्य फिरा और चकत्ता (औरंगज़ेब) के कुबुद्धि चढ़ने से (पैदा होने से) उसका भी नसीब पलट गया । शिवाजी में जो सुन्दर दान (देने की) कीर्ति है, वही मैंने मोतियों के पानी (आब) में अनुपम रुचि (चमक) देखी है ॥ १३९ ॥

दोहा

औरन को जो जनम है सो वाको यक रोज ।
औरन को जो राज सो सिव सरजा की मौज ॥ १४० ॥

औरों का जीवन भर शिवाजी के लिये एक दिन है । औरों का जो राज्य है, वह शिवाजी की मौज (इच्छा पर निर्भर) है ॥ १४० ॥

साहिन सो रन माँड़िबो कीबो सुकबि निहाल ।
सिव सरजा को ख्याल है औरन को जंजाल ॥ १४१ ॥

शाहों से युद्ध ठानना, सुकवियों को निहाल करना सरजा शिवाजी का एक ख़याल या खेल भर है, पर वही औरों के लिये जंजाल (कठिन) है ॥ १४१ ॥

लक्षण

सम छबिवान दुहून मैं जहँ बरनत बढ़ि एक ।
भूषन कबि कोबिद सबै ताहि कहत ब्यतिरेक ॥ १४२ ॥

समान छवि वाले दोनों में जहाँ एक को बढ़ाकर वर्णन किया जाता है, वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है ॥ १४२ ॥

छप्पै

त्रिभुवन में परसिद्ध एक अरि बल वह खण्डिय ।
यह अनेक अरि बल बिहंडि रनमंडल मंडिय ॥
भूषन वह ऋतु एक पुहुमि पानिपहि बढ़ावत ।
यह छहु ऋतु निसिदिन अपार पानिप सरसावत ॥
सिवराज साहि-सुव सत्य नित हय गज लक्खन संचरइ ।
यक्कइ गयंद यक्कइ तुरंग किमि सुरपति सरबरि करइ ॥ १४३ ॥

इन्द्र ने तीनों लोकों में प्रसिद्ध एक शत्रु बल असुर को खंडित किया—मारा है, किन्तु इन शिवाजी ने अनेक शत्रुओं के बल (सेना) को नष्ट करके युद्धक्षेत्र की शोभा बढ़ाई है । भूषण कहता है, वह (इन्द्र) एक ही ऋतु (वर्षा) में पृथ्वी पर जल को बढ़ाता है, और यह (शिवाजी) छहों ऋतुओं में दिन-रात अपार पानी (मान) सरसाते अर्थात् बढ़ाते हैं । शाहि के पुत्र शिवराज के साथ नित्य लाखों घोड़े-हाथी चलते हैं, पर इन्द्र के पास एक ही हाथी (ऐरावत) और एक ही घोड़ा (उच्चैःश्रवा) है । फिर वह इन्द्र शिवाजी को कैसे सरबर (बराबरी) करे ? ॥ १४३ ॥

कवित्त

दारुन दुगुन दुरजोधन ते अवरंग भूषन भनत जग राख्यो छल मढ़िकै । धरम धरम बल भीम पैज अरजुन नकुल अकिल सहदेव तेज चढ़िकै ॥ साहि के सिवाजी गाजी करचो दिली माँहि चंड पांडवन हू ते पुरुषारथ सुबढ़िकै । सूने लाखभौन ते कढ़े वै पाँच राति मैं जु द्यौस लाख चौकी ते अकेले आयो कढ़िकै ॥ १४४ ॥

दुर्योधन से दूने दारुण औरंगज़ेब ने, भूषण कहता है, जगत को छल

से मढ़ रक्खा है, अर्थात् अपने कपट-जाल में फँसा रक्खा है। शाहि के पुत्र ग़ाज़ी शिवाजी ने दिल्ली में पाण्डवों से भी बढ़कर प्रचण्ड पुरुषार्थ किया। कारण, पाण्डव तो सूने लाख-भवन (लाक्षागृह) से रात में निकले थे, और उसमें युधिष्ठिर के धर्म, भीमसेन के बल, अर्जुन की पैज, नकुल की बुद्धि और सहदेव के तेज ने मिलकर यह काम किया था; किन्तु शिवाजी अकेले ही (अपने धर्म, बल, पैज, बुद्धि और तेज के प्रभाव से) दिन में लाख चौकियों (पहरों) से, अथवा लाखों की चौकी से निकल आए ॥ १४४ ॥

दोहा

बस्तुन को भासत जहाँ जनरंजन सह भाव।
ताहि सहोक्ति बखानहीं जे भूषन कबिराव ॥ १४५ ॥

जहाँ लोक-मनोरंजन के साथ वस्तुओं का भावार्थ प्रकट किया जाय, वहाँ सहोक्ति अलङ्कार कहा जाता है ॥ १४५ ॥

कवित्त

छूट्यो है हुलास आमखास एक संग छूट्यो हरम सरम एक संग बिनु ढंग ही। नैनन ते नीर धीर छूट्यो एक संग छूट्यो सुख रुचि मुख रुचि त्यों ही बिन रंग ही ॥ भूषन बखाने सिवराज मरदाने तेरी धाक बिललाने न गहत बल अंग ही। दक्खिन के सूबा पाय दिल्ली के अमीर तजैं उत्तर की आस जीव आस एक संग ही ॥ १४६ ॥

भूषण कहता है, हे शिवराज मर्दाने, दक्षिण का सूबा (अर्थात् सूबेदारी) पाकर दिल्ली के अमीरों का हुलास (प्रसन्नता) छूटती है, एक साथ ही आमखास, हरम (अंतःपुर) और शर्म छूटती है। उनके नयनों से नीर (आसू) छूटता है, हृदय से धैर्य छूटता है, सुख की रुचि और मुख की रुचि (कान्ति) एक साथ ही छूट जाती है, चेहरों पर बदरंग छा जाता है। तेरी धाक (आतंक) से वे बिललाने फिरते हैं, अंग (शरीर) बल नहीं धरता। वे अमीर उत्तर को लौटकर आने की आशा और जीवन की आशा एक संग ही छोड़ देते हैं ॥ १४६ ॥

दोहा

बिना कछू जहँ बरनिए कै हीनो कै नीक।
ताको कहत बिनोक्ति हैं कबि भूषन मति ठीक ॥ १४७ ॥

जहाँ 'विना' शब्द के साथ किसी वस्तु को हीन या अच्छा कहा जाय, वहाँ विनोक्ति अलङ्कार होता है ॥ १४७ ॥

उदाहरण

सोभमान जग पर किये सरजा सिवा खुमान।
साहिन सों बिनु डर अगड़ बिन गुमान को दान ॥ १४८ ॥

सरजा खुमान शिवा शाहों से बिना भय की ऐंठ और याचकों को विना गुमान का दान करके जगत् में सर्वोपरि विराजता है ॥ १४८ ॥

सवैया

को कबिराज बिभूषन होत बिना कबि साहितनै को कहाये।
को कबिराज सभाजित होत सभा सरजा के बिना गुन गाये ॥
को कबिराज भुवालन भावत भौंसिला के मन मैं बिनु भाये।
को कबिराज चढ़ै गजबाजि सिवाजी की मौज मही बिनु पाये॥१४९॥

शाहि-तनय का कवि कहलाए बिना कौन कवि कविराज-विभूषण होता है, अर्थात् कोई नहीं। सरजा की सभा में उनके गुण गाए बिना कौन कविराज सभाजित् (सभा को जीतने वाला) होता है? कोई नहीं। भौंसिला के मन को भाए बिना कौन कविराज राजों को भाता है, कोई नहीं। शिवाजी की मौज (कृपा) और उनसे पृथ्वी पाए बिना कौन कविराज घोड़ों और हाथियों पर चढ़ता है? कोई नहीं ॥ १४९ ॥

कवित्त

बिना लोभ को विवेक बिना भय जुद्ध टेक साहिन सों सदा साहितनै सिरताज कें। बिना ही कपट प्रीति बिना ही कलेस जीति बिना ही अनीति रीति लाज के जहाज के ॥ सुकबि समाज बिन अपजस जस भनि भूषन भुसिल भूप गरिबनेवाज के। बिना ही बुराई ओज बिना काज धनी फौज बिना अभिमान मौज राज सिवराज के ॥ १५० ॥

शाहि के पुत्र सिरताज शिवाजी के विना लोभ का विवेक और विना भय की युद्ध की टेक है। विना कपट की प्रीति, विना क्लेश की जीत और विना अनीति की रीति (व्यवहार) है। वह लज्जा के जहाज़ हैं। भूषण कहता है, ग़रीबनेवाज भौंसिला-भूप के सुकवि लोग विना अपयश (ऐब)

दाशरथि (दशरथ के पुत्र) हैं और उनकी भुजाओं पर पृथ्वी का भार है, और शिवाजी के पक्ष में जिनके रथी (योद्धा) दास हैं तथा हाथों पर पृथ्वी का भार है। राम ने शत्रु की लंक (लंकापुरी) तोड़ी, शिवाजी ने भी शत्रुओं की लंक (कमर) तोड़ दी। राम के साथ वानरों का ज़ोर है, शिवाजी के बाण ज़ोरदार हैं। राम ने सिंधु (सागर) को बाँधा है, और शिवाजी के यहाँ सिंधुर (हाथी) बँधे रहते हैं। दोनों ही के दल (सेना) का पार नहीं है। रामजी ने तो (विभीषण आदि को) ग्रहण करके भेंटा (गले लगाया) है, और राक्षसों का मर्दन करना जानते हैं तथा शिवाजी जिस मर्द को राक्षस (-सा क्रूर या अत्याचारी) जानते हैं, उसे पकड़कर तेग़ की भेंट करते हैं ॥ १६२ ॥

तथा

देखत सरूप को सिहात न मिलन काज जग जीतिबे की जामें रीति छल बल की। जाके पास आवै ताहि निधन करत बेगि भूषन भनत जाकी संगति न फल की ॥ कीरति कामिनी रच्यो सरजा सिवा की एक बस कै सकै न बसकरनी सकल की। चंचल सरस एक काहू पै न रहै दारी गनिका समान सूबेदारी दिल्ली दल की ॥ १६३ ॥

चंचल, सरस (रसीली तथा लोभ पैदा करने वाली) और छिनाल वेश्या के समान दिल्ली दल की सूबेदारी किसी एक के पास नहीं रहती (टिकती)। सरूप (स्वरूप) को देखकर मिलने के लिये कौन नहीं ललचाता? जिसमें (गणिका और सूबेदारी, दोनों में) छल-बल से युक्त जगत् भर के जीतने की रीति (व्यवहार और ढंग) देख पड़ती है। जिसके पास आती है, उसी का निधन (मृत्यु) करती है। गणिका के पक्ष में उसी को निर्धन कर देती है—कंगाल बना देती है। भूषण कहता है, जिसकी संगति फल देने वाली नहीं है। सूबेदारी के पक्ष में किसी को नहीं फलती। शिवाजी एक कीर्ति-कामिनी (कीर्तिरूपिणी अपनी पत्नी) के वश में हैं, इसी से सबको वश में करने वाली यह सूबेदारी उन्हें वश नहीं कर सकती ॥ १६३ ॥

दोहा

प्रस्तुति लीन्हें होत जहँ अप्रस्तुत परसंस।
अप्रस्तुतपरसंस सो कहत सुकबि अवतंस ॥ १६४ ॥

जहाँ प्रकट रूप से न कहकर अप्रकट रूप से प्रशंसा की जाय, वहाँ अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार होता है ॥ १६४ ॥

उदाहरण

हिन्दुनि सों तुरकिनि कहैं तुम्हैं सदा संतोष।
नाहिन तुम्हरे पतिन पर सिव सरजा कर रोष ॥ १६५ ॥

तुर्कों की स्त्रियाँ हिन्दुओं की स्त्रियों से कहती हैं, तुम्हें सदा सन्तोष (चैन) है; क्योंकि तुम्हारे पतियों पर सरजा शिवाजी का रोष नहीं है ॥ १६५ ॥

अरि-तिय भिल्लिनि सों कहैं घन बन जाय इकंत।
सिव सरजा सों बैर नहिं सुखी तिहारे कंत ॥ १६६ ॥

शत्रुओं की नारियाँ घने वन के एकान्त में जाकर भीलनियों से कहती हैं कि तुम्हारे पति सुखी हैं; क्योंकि सरजा शिवाजी से उनका वैर नहीं है ॥ १६६ ॥

काहू पै जात न भूषन जे, गढ़पाल की मौज निहाल रहै हैं।
आवत हैं जु गुनी जन दच्छिन भौंसिला के गुन गीत लहै हैं ॥
राजन राव सबै उमराव खुमान की धाक धुके यों कहै हैं।
संक नहीं सरजा सिवराज सों आज दुनी में गुनी निरभै हैं ॥१६७॥

भूषण कहता है, जो किसी के पास नहीं जाते, गढ़पाल (शिवा) की मौज (कृपा) से निहाल रहते हैं, ऐसे जो गुणीजन दक्षिण में आकर भौंसिला (शिवा) के गुणों के गीत गाते हैं, उन्हें देखकर, खुमान (शिवा) की धाक (रोब या आतंक) से काँप रहे सभी राजा, राव, उमराव यों कहते हैं कि गुणीजनों को सरजा शिवाजी से कोई शंका नहीं है, वे आज संसार में निर्भय हैं ॥ १६७ ॥

दोहा

बचनन की रचना जहाँ बर्ननोय पर जानि।
परजायोकति कहत हैं भूषन ताहि बखानि ॥ १६८ ॥

जहाँ उपमेय पर वचन-रचना की जाती है, वहाँ पर्यायोक्ति अलंकार होता है ॥ १६८ ॥

कवित्त

महाराज सिवराज तेरे बैर देखियतु घन बन ह्वै रहे हरम हबसीन के। भूषन भनत तेरे बैर रामनगर जवारि परबाह बहे रुधिर नदीन के॥ सरजा समर्त्थ बीर तेरे बैर बीजापुर बैरी बयरनि कर चीन्ह न चुरीन के। तेरे रोष देखियतु आगरे दिल्ली के बीच सिन्दुर के बिन्दु मुख इन्दु जवनीन के॥ १६९॥

हे महाराज शिवराज, तेरे वैर से हबशियों के हरम (अन्तःपुर) घने वन हो रहे देख पड़ते हैं (अर्थात् उन्हें सपरिवार घर छोड़कर जंगलों में रहना पड़ रहा है)। भूषण कहता है, तेरे वैर से रामनगर की जवारि (जथे) में रक्त की नदियों के प्रवाह बहे हैं। हे सरजा समर्थ वीर, तेरे वैर से बीजापुर वाले वैरियों की औरतों के हाथों में चुड़ियों के चिह्न भी नहीं रह गए। तेरे रोष (क्रोध) से आगरे और दिल्ली के बीच यवनियों के मुखचंद्रों पर सेंदुर के बिंदु देख पड़ते हैं (मतलब) यह कि अपनी जान बचाने के लिये मुसलमानिनें हिन्दू स्त्रियों का वेष धारण करती हैं)॥ १६९॥

दोहा

अस्तुति में निन्दा कढ़ै निन्दा में स्तुति होय।
ब्याजस्तुति ताको कहत कबि भूषन सब कोय॥ १७०॥

जहाँ स्तुति में निन्दा निकले अथवा निन्दा में स्तुति होती हो, वहाँ सब कवि व्याजस्तुति अलंकार कहते हैं॥ १७०॥

कवित्त

पीरी पीरी हुन्नै तुम देत हौ मँगाय हमैं सुबरन हम सों परखि करि लेत हौ। एक पल ही मैं लाख रूखन सों लेत लोग तुम राजा ह्वै कै लाख दीबे को सचेत हौ॥ भूषन भनत महराज सिवराज बड़े दानी दुनी ऊपर कहाये केहि हेत हौ। रीझि हँसि हाथी हमैं सब कोऊ देत कहा रीझि हँसि हाथी एक तुमहियै देत हौ॥ १७१॥

तुम हमें पीली-पीली हुन्नें मँगाकर देते हो और हमसे सुवर्ण (सोना और सुन्दर अक्षर अर्थात् कविता) परखकर लेते हो। लोग एक ही पल में

रूखों (वृक्षों और रूखे मिज़ाज वालों) से लाख (लाख और लाखों रुपए) ले लेते हैं, और तुम राजा होकर लाख (लाखों की दौलत) देने को सचेत अर्थात् तैयार हो। भूषण कहता है, हे महाराज शिवराज, तुम दुनिया के ऊपर बड़े दानी (सर्वश्रेष्ठ अलौकिक दानी) किसलिये कहलाए हो? रीझकर हँसकर क्या एक तुम्हीं हमको हाथी देते हो, सभी लोग (हमारी कविता से) रीझकर हँसकर हमें हाथी (हथोरी—ताली) देते हैं॥ १७१॥

तथा

तू तो रातदिन जग जागत रहत वेऊ जागत रहत रातदिन बनरत हैं। भूषन भनत तू बिराजै रज भरो वेऊ रज भरी देहन दरी मैं बिचरत हैं॥ तू तौ सूरगन को बिदारि बिहरत सूर-मंडलै बिदारि वेऊ सुरलोक रत हैं। काहे ते सिवाजी गाजी तेरोई सुजस होत तोसों अरिबर सरिवर सी करत हैं॥ १७२॥

तू तो रात-दिन जगत् में जागता रहता है, और वे (तेरे शत्रु) भी रातोदिन बन में रहकर जगते हैं। भूषण कहता है, तू रज (राजलक्ष्मी) से भरा हुआ विराजता है, और वे भी रज (धूल) से भरे (सने हुए) शरीर से पर्वतों की कन्दराओं में विचरते हैं। तू सूरगन (शूरगण) को फाड़कर विहार करता है, और वे भी सूर (सूर्यमण्डल) को भेदकर सुरलोक को जाते हैं। हे शिवाजी ग़ाज़ी, फिर तेरा ही सुयश क्यों होता है? तेरे श्रेष्ठ शत्रु तेरी सरवर (बराबरी)-सी करते हैं॥ १७२॥

दोहा

पहिले कहिये बात कछु पुनि ताको प्रतिषेध।
ताहि कहत आच्छेप हैं भूषन सुकबि सुमेध॥ १७३॥

पहले कुछ बात कहिए और फिर उसका प्रतिषेध (निषेध) कीजिए, ऐसा जहाँ हो, वहाँ आक्षेप अलंकार होता है॥ १७३॥

सवैया

जाय भिरौ न भिरे बचिहौ भनि भूषन भौंसिला भूप सिवा सों।
जाय दरीन दुरौ दबि औ तजि कै दरियाव लँघौ लघुता सों॥
सीछन काज उजीरन को कढ़े बोल यों एदिलसाहि सभा सों।
छूटि गयो तो गयो परनालो सलाह की राह गहौ सरजा सों॥१७४॥

चन्द्र हुए। (द्वापर में) कंस के कुटिल और बली वंश का विध्वंस करने को यदुराज वसुदेव के कुमार श्रीकृष्णजी हुए। वैसे ही हे पृथ्वी के इन्द्र, साहि के सपूत शिवराज, म्लेच्छों के मारने को (कलियुग में) तेरा अवतार हुआ है ॥ ३४४ ॥

दोहा

जहाँ काज ते हेतु कै जहाँ हेतु ते काज।
जानि परत अनुमान तहँ कहि भूषन कबिराज ॥ ३४५ ॥

जहाँ कार्य से कारण अथवा कारण से कार्य जान पड़ता है, वहाँ अनुमान अलंकार होता है ॥ ३४५ ॥

कवित्त

चित्त अनचैन आँसू उमँगत नैन देखि बीबी कहैं बैन मियाँ कहियत काहि नै। भूषन भनत बूझे आये दरबार ते कँपत बार बार क्यों सँभार तन नाहि नै ॥ सीनो धकधकत पसीनो आयो देह सब हीनो भयो रूप न चितौत बाएँ दाहिनै। सिवाजू की संक मानि गये हौ सुखाय तुम्हैं जानियतु दक्खिन को सूबा करो साहि नै ॥ ३४६ ॥

चित्त को बेचैन और आँखों में उमँगते हुए आँसू देखकर बीवियाँ (अपने पतियों से) यों वचन कहती हैं कि मियाँ, कहते क्यों नहीं (अपने हृदय की बेचैनी का कारण बतलाते क्यों नहीं) ? भूषण कहता है, जान पड़ता है, शाह के दरबार से आ रहे हो। बार-बार काँप क्यों रहे हो ? देह का सँभाल नहीं है। तुम्हारा सीना (छाती) धड़क रहा है। सारे शरीर में पसीना आ रहा है, रूप हीन (फीका) हो गया है। दाहने-बाएँ नहीं देखते हो। जान पड़ता है, शाह ने तुम्हें दक्षिण का सूबेदार कर दिया है, इसी से शिवाजी की शंका (भय) मानकर सूख गए हो ॥ ३४६ ॥

तथा

अंभा सी भई दिन की संभा सी सकल दिसि गगन लगन रही गरद छवाय है। चील्ह गीध बायस समूह घोर रोर करैं ठौर ठौर चारों ओर तम मड़राय है ॥ भूषन अँदेस देस देस के नरेसगन आपुस मैं कहत यों गरब गँवाय है। बड़ो बड़वा को

चित्त अनचैन आँसू उमँगत नैन देखि बीबी कहैं बैन मियाँ कहियत काहिनै। भूषन भनत बूझे आये दरबार ते कँपत बार-बार क्यों सँभार तन नाहिनै ॥ सीनो धकधकत पसीनो आयो देह सब हीनो भयो रूप न चितौत बाएँ दाहिनै। सिवाजू की संक मानि गये हौ सुखाय तुम्हैं जानियतु दक्खिन को सूबा करो साहिनै ॥